INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD)
© 2026 IJNRD | Volume 11, Issue 2, February 2026 | ISSN: 2456-4184 | IJNRD.ORG

हिंदी साहित्य तथा भाषा पर बाज़ारवाद का प्रभाव

डॉ. सोनाली रामदास हरदास
M.A Hindi, B.Ed., Net, Set, PhD
हिंदी विभागाध्यक्ष
श्री साईबाबा महाविद्यालय,शिर्डी

प्रस्तावना -

प्रगति चाहे देश की हो या समुदाय की उसमें भाषा की अहम् भूमिका होती है। भाषा न सिर्फ ज्ञान की संवाहक है वरन् देश की उन्नति एवं प्रगति की भी द्योतक है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर हम जान सकते हैं कि भारतवर्ष के धर्म, दर्शन, विज्ञान, चिकित्सा आदि विषयों की भाषा संस्कृत थी। हमारा जो कुछ श्रेष्ठ है, उत्तम हैं, रक्षणीय है वह इस भाषा के भण्डार में संचित किया गया है। संस्कृत भाषा मे साहित्य की रचना कम से कम छह हजार वर्षों से निरंतर होती आ रही है। आधुनिक युग मे हिंदी हमारे देश में सबसे ज्यादा लोगों द्वारा बोली या समझी जाने वाली भाषा है। इलेक्ट्रोनिक मीडिया द्वारा प्रदत्त विकसित जनसंचार, माध्यमों के अभाव में भी आजादी की लड़ाई के दौर से ही हिंदी को आम जनता तक पहुँचने का सबसे प्रभावशाली माध्यम माना गया और केशवचंद्र सेन से लेकर गांधी जी व चक्रवर्ती राजगोपालाचारी जैसे अहिंदी भाषी नेताओं ने इसे अपनाया और इसकी वकालत की। जहां तक आम जनता तक अपनी बात पहुंचाने का सवाल है कमोबेश आज भी हिंदी की इस स्थिति मे कोई अंतर नहीं आया है।

बाजारवाद साहित्य पर हावी होणे के कारण -

1. साहित्य का वस्तुकरण (Commodification)

बाज़ारवाद के प्रभाव से साहित्य एक उत्पाद के रूप में देखा जाने लगा है। प्रकाशन उद्योग में अब रचना की गुणवत्ता से अधिक उसकी बिक्री क्षमता महत्वपूर्ण हो गई है। 'बेस्टसेलर' संस्कृति ने साहित्य के मूल्यांकन की कसौटी को बदल दिया है।

2. विषयवस्तु में परिवर्तन

समकालीन हिंदी साहित्य में अब ऐसे विषय अधिक दिखाई देते हैं जो पाठक को तुरंत आकर्षित करें—व्यक्तिगत अनुभव, प्रेम, संबंध, आत्मकथा, सनसनी और निजी जीवन के संघर्ष। सामाजिक विषमता, वर्ग-संघर्ष और सामूहिक चेतना जैसे विषय अपेक्षाकृत कम होते जा रहे हैं।

3. लेखक की भूमिका में बदलाव

लेखक अब केवल सृजनकर्ता नहीं, बल्कि एक 'ब्रांड' के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा है। लेखक की लोकप्रियता, सोशल मीडिया उपस्थिति और बाज़ार में पहचान उसकी रचनात्मक स्वायत्तता को प्रभावित करती है।

• बाज़ारवाद और साहित्यिक विधाएँ -

उपन्यास -

उपन्यास में बाज़ारवादी प्रभाव सबसे अधिक दिखाई देता है। मोटे, मनोरंजक और कथानक-प्रधान उपन्यास अधिक बिकाऊ माने जाते हैं। गंभीर वैचारिक उपन्यास सीमित पाठक वर्ग तक सिमट जाते हैं।बाजारवाद (Marketism) का उपन्यासों पर गहरा प्रभाव पड़ा है, जिससे भौतिकतावाद, उपभोक्ता संस्कृति, रिश्तों में स्वार्थ, पारंपरिक मूल्यों का क्षरण, और नारी-शोषण जैसे मुद्दे प्रमुखता से उभरे हैं, जो आधुनिक समाज के मोहभंग और विघटन को दर्शाते हैं, जैसे रिश्तों में

सिमटता स्नेह और विज्ञापन जगत में स्त्री का वस्तुकरण। उपन्यास बाजारवाद की चकाचौंध के बीच आम आदमी, खासकर किसानों और महिलाओं के संघर्षों को चित्रित करते हैं, और दिखावा तथा लालच के कारण मानव-मूल्यों के पतन को उजागर करते हैं।

***बाजारवाद के प्रभाव के मुख्य बिंदु-**

1. **पारंपरिक मूल्यों और रिश्तों का विघटन:**

बाजारवाद ने पारिवारिक और सामाजिक रिश्तों में स्वार्थ और भौतिकता को बढ़ावा दिया है, जिससे आपसी स्नेह कम हो रहा है और लोग अपने ही घर में पराये हो रहे हैं।

2. **उपभोक्तावाद और मोहभंग:**

विज्ञापन संस्कृति से कृत्रिम इच्छाएँ पैदा होती हैं, जिससे व्यक्ति जरूरत से ज्यादा खर्च करने लगता है और अंततः असंतोष व मोहभंग का शिकार होता है।

कविता -

कविता में भी मंचीय और सोशल मीडिया कविता का प्रचलन बढ़ा है। त्वरित प्रभाव और भावुकता को महत्व मिलने लगा है, जिससे कविता की गहनता और शिल्प पर असर पड़ा है।

कविता और बाजारवाद के अंतर्संबंध मानवीयता का क्षरण: बाज़ारवाद की उपभोक्तावादी संस्कृति ने व्यक्ति को 'वस्तु' (item) में बदल दिया है, जिससे निजी संवेदनाएँ मर रही हैं और व्यक्ति सिर्फ क्रेता या विक्रेता बनकर रह गया है, और कविताएँ भी इसी संवेदनहीन भीड़ का हिस्सा बन रही हैं।

***साहित्य का व्यवसायीकरण-**

पहले लेखक समाज के हित के लिए लिखते थे (जैसे तुलसीदास 'स्वान्तः सुखाय'), लेकिन अब लेखन एक व्यवसाय बन गया है, जहाँ रॉयल्टी और पैसे के लिए लिखा जाता है, जिससे रचनात्मकता घट गई है और लेखकों का ध्यान केवल धन कमाने पर है।

***समीक्षा का बाजारीकरण-**

साहित्य की समीक्षा भी अब निष्पक्ष नहीं रही; प्रकाशक अपने फायदे के लिए समीक्षकों से समीक्षा करवाते हैं, जिससे पाठकों का विश्वास कम होता है। कवियों की स्थितिः कई कवि बाज़ार के मायाजाल में फंसकर या तो बाज़ार का चित्रण करते हैं (जैसे कुमार अंबुज) या पुरस्कार और प्रसिद्धि पाने के लिए लिखते हैं, और कभी-कभी समाज पर उनकी कविताओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

कहानी -

कहानी में जीवन की जटिलताओं के बजाय तात्कालिक अनुभवों और निजी संवेदनाओं पर अधिक जोर दिया जा रहा है।

***बाज़ारवाद के सकारात्मक प्रभाव-**

हिंदी साहित्य का विस्तार और प्रसार हुआ है।

नए लेखकों को प्रकाशन और पहचान के अवसर मिले हैं।

डिजिटल माध्यमों ने साहित्य को लोकतांत्रिक बनाया है।

ई-बुक, वेब पत्रिकाएँ और ब्लॉग ने पाठक संख्या बढ़ाई है।

***नकारात्मक और चिंताजनक पहलू-**

साहित्य की वैचारिक और सामाजिक भूमिका कमजोर हुई है।

गुणवत्ता के स्थान पर लोकप्रियता को महत्व दिया जा रहा है।

गंभीर साहित्य हाशिए पर जा रहा है।

भाषा की सांस्कृतिक पहचान पर संकट उत्पन्न हुआ है।

***बाज़ारवाद और प्रतिरोध की चेतना-**

इसके बावजूद हिंदी साहित्य में बाज़ारवाद के विरुद्ध प्रतिरोध की परंपरा भी मौजूद है। कई लेखक आज भी जनपक्षधर, संवेदनशील और वैचारिक साहित्य रच रहे हैं। यह दर्शाता है कि साहित्य पूरी तरह बाज़ार के अधीन नहीं हुआ है, बल्कि संघर्ष की स्थिति में है।

***बाजारवाद से हानी तथा लाभ-**

समय के साथ-साथ बाजार का चेहरा, चरित्र और मूल्य भी बदल गया । वस्तु विनिमय की जगह आज रूपयों ने ले ली है। आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी ने 'अंधेर नगरी' के द्वारा बाजार की भी पोल खोल दी है। यह सर्वविदित है कि अंग्रेज मूलतः व्यापारी बनकर बाजार के उद्देश्य से ही आए थे। नतिजा यह निकला कि उन्होंने बाजार की जड़े इतनी पक्की कर दी कि वे यहाँ के शासक बनकर सत्तासीन हो गए । बाजार में वस्तुओं की खरीदी-बिक्री का व्यवहार तो खैर लाजिमी है, लेकिन सुना है कि इन्सानों की भी खरीदी-बिक्री हुआ करती थी । खरीद कर उन्हें गुलाम बनाया जाता था । सरे आम बाजार में बिकाऊ इन्सान के सीर पर चारे-घास फूस की गठरी रखकर निलामी की जाती थी। किसी कवि ने कहा है-

'बाप बेटा बेचता है, भूख से बेहाल होकर जहाँ सारा देखता है...'

इक्कीसवीं सदी का समय और समाज तो आधुनिक तकनीकी उपकरणों से लैस है । उपभोक्तावाद और सूचना क्रांति की अन्धी दौड़ में हमारे पारस्परिक प्रेम एवं सद्भाव की गठरी ढीली पड़ चुकी है। वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण के चमकीले नारों के पीछे हमारी मानवीय संवेदना को ग्रहण लग चुका है। बाजारवाद हमारे चारों ओर मायानगरी की तरह व्याप्त है । इसका विरोध और धिक्कार करने के बावजूद भी हम उसी में जीने के लिए अभिशप्त है। आज भूमंडलीकरण के द्वारा हम विश्वग्राम और 'वसुधैव कुटुम्बकम' की बात तो करते हैं, जो कि सहकारिता, समानता और नैतिकता के मूल्यों पर आधारित होनी चाहिए, जिसमें पारस्परिक प्रेम और सद्भाव तथा भोग की अपेक्षा त्याग पर बल देना चाहिए।

आज हम जिस संसार में रह रहे है, उस पर उपभोक्तावाद हावी हो चुका है किन्तु अजीब बात यह है कि उसके उद्भव के विषय में शायद ही कोई तार्किक चर्चा कर पा रहा हो। सच बात तो यह है कि उपभोग और उत्पाद बाजारवाद का अभिन्न अंग है। बाजारवाद की परिघटनाएं अनंतकाल से विद्यमान है और उनके स्वरूप में निरंतर परिवर्तन जारी है। उत्पादन सृजन करता है तो उपभोग सृजित वस्तुओं का अस्तित्व समाप्त कर देता है। बीसवीं सदी के मध्य से उपभोग और उपभोक्ता जैसे शब्द अर्थशास्त्र की परिधि से निकल कर आम बोलचाल में आ गए है। ग्राहक के बदलो उपभोक्ता शब्द का प्रयोग होने लगा है। औद्योगिक क्रांति के बाद उत्पादन तेजी से बढ़ा और ग्राहकों को रिझाने के लिए विभिन्न रूपों में विज्ञापन का सहारा लिया गया।

• निष्कर्ष-

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बाज़ारवाद का हिंदी साहित्य एवं भाषा पर प्रभाव गहरा, व्यापक और द्वंद्वात्मक है। एक ओर इसने साहित्य को नई तकनीक, नए पाठक और नया विस्तार दिया है, वहीं दूसरी ओर उसकी आत्मा—मानवीय संवेदना, सामाजिक सरोकार और वैचारिक प्रतिबद्धता—को चुनौती भी दी है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हिंदी साहित्य बाज़ार की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए भी अपने मूल मूल्यों से समझौता न करे। साहित्य तभी सार्थक और जीवंत रहेगा, जब वह बाज़ार के दबाव में अपनी सामाजिक जिम्मेदारी और सांस्कृतिक चेतना को सुरक्षित रख पाएगा।

संदर्भ ग्रंथ-

१. बाजारवाद मे हिंदी- प्रभाकर श्रोत्रीय

२. भूमंडलीकरण ,बाजार और समकालीन कहानी - अरुण होता

३. मिडिया और बाजार - वर्तिका नंदा

४. भूमंडलीकरण और भारत : परिदृश्य और विकल्प - प्रो.अमित कुमार सिंह

• **Copyright & License:**
© Authors retain the copyright of this article. This work is published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0), permitting unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.